पहाड़ की स्मृति

अब तो मण्डी में रेल, बिजली और मोटर सभी कुछ हो गया है पर एक ज़माना था, जब यह सब कुछ न था। हमीरपुर से रुवालसर के रास्ते लोग मण्डी जाया करते थे। उस समय व्यापार या तो खच्चरों द्वारा होता था या फिर आदमी की पीठ पर चलता था। उन दिनों मैं मण्डी की राह कुल्लू गया था।

मण्डी नगर से कुछ उधर ही एक अधेड़ उमर की पहाड़िन को, बांस की टोकरी में खुरबानियां लिए सड़क किनारे बैठे देखा। पहाड़ी लोग अक्सर इस तरह कुछ फल-वल ले सड़क के किनारे बैठ जाते हैं और राह चलतों के हाथ पैसे-पैसे, दो-दो पैसे का सौदा बेचते रहते हैं। खुरबानियां बहुत बड़ी-बड़ी और बढ़िया थीं।

मेरे समीप पहुंचते ही उस पहाड़िन ने बिगड़ी हुई पंजाबी में सवाल किया— "क्या तुम लाहौर के रहनेवाले हो?"

मेरी पोशाक देखकर ही शायद उसे यह खयाल आया होगा कि मैं लाहौर का रहनेवाला हो सकता हूं।

सोचा—क्या यह मुझे पहचानती है? उत्तर दिया—"हां, मैं लाहौर का रहनेवाला हूं।"

उसकी आंखें कद्रे खुशी से चमक उठीं, उसने पूछा—"तुम परसराम

को जानते हो ?"

विस्मय से मैंने पूछा—"परसराम ! कौन परसराम ?"

कुछ व्यग्र होकर उसने उत्तर दिया—"परसराम ठेकेदार !"

कुछ मतलब न समझ फिर पूछा—"कौन परसराम ठेकेदार ?"

मैं जिस ओर से चलकर आ रहा था, उसी ओर हाथ से संकेत कर उसने कहा—"वह दोनों पुल जिसने बनवाए थे।"

बात मेरी समझ में न आई। मैंने उत्तर दिया—"मैं परसराम को नहीं जानता। होगा कोई, क्यों ?"

उदास हो उसने कहा—"तुम लाहौर के रहनेवाले हो, और उसे नहीं पहचानते ! वह भी तो लाहौर का रहनेवाला है।……परसराम ठेकेदार है न ?"

पहाड़िन की अधीरता से कुछ द्रवित हो मैंने पूछा—"किस गली, किस मुहल्ले का रहनेवाला है वह ?"

बहुत चिन्तित भाव से एक हाथ गाल पर रखकर उसने धीरे-धीरे कहा—"गली-मुहल्ला ?…गली-मुहल्ला नहीं, वह लाहौर का रहनेवाला है। तुम भी तो लाहौर के रहनेवाले हो, उसे नहीं पहचानते ?"

उस औरत की नादानी पर मैं हंस न सका। उसे समझाने की कोशिश की कि लाहौर बहुत बड़ा शहर है। अधिक नहीं तो दो-ढाई लाख आदमी लाहौर में बसते होंगे। वहां एक-एक मुहल्ले में इतने आदमी हैं कि एक-दूसरे को नहीं पहचान सकते। मैं हीरा मण्डी में रहता हूं। यदि परसराम ठेकेदार मजंग में रहता हो, तो वह मुझसे साढ़े तीन मील दूर रहता है, हालांकि वह भी लाहौर में रहता है और मैं भी लाहौर में ही रहता हूं और हम लोगों के बीच दूसरे लाखों आदमी रहते हैं।"

बात औरत की समझ में नहीं आई। उसकी आंखों की प्रसन्नता काफूर हो गई। गाल पर हाथ रखकर धीमी आवाज़ में उसने कहा—"वह लाहौर का रहनेवाला है। लम्बा, गोरा-गोरा, प्यारी-प्यारी आंखें हैं, तुमसे कुछ जवान है, भूरा-भूरा कोट पहनता है, रेशमी साफा बांधता

है, वह लाहौर का रहनेवाला है।"

मैंने दुःखित हो उत्तर दिया—"नहीं, मैं नहीं पहचानता।"

उसकी टोकरी के पास उकड़ूं बैठ खुरबानियां चुन-चुनकर मैं अपने रूमाल में रखने लगा। सहानुभूति के तौर पर मैंने पूछा—"क्यों, तुम्हें उससे कुछ काम है क्या?"

गहरी सांस खींचकर उसने कहा—"परसराम यहां पुल बनवाता था। पांच बरस हो गए, तब वह यहां था। वह जाने लगा तो मैंने कहा—मत जा। उसने कहा, मैं बहुत जल्दी, थोड़े ही दिन में लौट आऊंगा। वह आया ही नहीं······लाहौर तो बहुत दूर है न?"

मैंने उत्तर दिया—"हां, बहुत दूर है।"

उसकी आंखों में नर्मी आ गई। उसने गर्दन झुकाकर कहा—"न जाने वह क्यों नहीं आया······न जाने कब आएगा······पांच बरस हो गए, आया नहीं?" वह चुप हो गई।

कुछ देर बाद गर्दन झुकाए ही वह बोली—"उसकी राह देखती रहती हूं, इसीलिए यहां सड़क पर भी आ बैठती हूं। मेरा बहुत-सा काम हर्ज होता है लेकिन दिल घबराता है तो यहां आ बैठती हूं। दो और आदमी लाहौर से आए थे पर वह नहीं आया, पांच बरस हो गए।" वह चुप हो गई।

एक छोटी-सी लड़की, प्रायः पांच बरस की······एक ओर से दौड़ती आई। मुझ अपरिचित को देख वह सहम गई। फिर मुझे अलक्ष्य कर, मां के आंचल में मुंह छिपा वह उसके गले से लिपट गई।

मैंने पूछा—"यह तुम्हारी लड़की है?"

सिर झुकाकर उसने हामी भरी। लड़की के सिर पर हाथ फेरते हुए उसने कहा—"यह भी पांच बरस की हो गई। इसने बाप को अभी तक नहीं देखा। देखे तो पहचान भी न पाए।"

उन दोनों की ओर देखते हुए मन में विचार आया—कवि लोग कहते हैं, विरह प्रेम का जीवन है और मिलन अन्त। क्या यह अपने प्रेम का अन्त

कर देना चाहती है ? यों यह प्रेम क्या सदा बना रहेगा ? फिर खयाल आया — यह स्त्री निर्लज्ज है ? क्या इसका प्रेम त्याग और तपस्या का उदाहरण नहीं है ?

पूछा —"कितने पैसे ?"

बोली —"नहीं, पैसे क्या; तुम लाहौर के रहनेवाले हो, तुमसे पैसे क्या ?" और दोनों हाथों की अंजुली से जितनी खुरवानियां रूमाल में आ सकती थीं, उसने भर दीं।

समझ गया औरत पैसे न लेगी। उसकी वह उदास सूरत मन में चुभ-सी रही थी। उठकर जाते भी क्रूरता अनुभव होती थी। असबाब का खच्चर दूर निकल गया होगा, इस खयाल से उठना ही पड़ा। एक अठन्नी निकाल आत्मीयता के भाव से बच्चे के हाथ में देनी चाही। औरत ने इन्कार किया परन्तु मेरा भाव समझकर, उसने बेटी को अनुमति दे दी।

उन्हें छोड़ मैं बस्ती की एक धर्मशाला में जा टिका। कल्पना में वही सड़क के किनारे प्रतीक्षा में बैठी पहाड़िन दिखाई देती रही। मानो वहीं प्रतीक्षा में बैठ-बैठकर वह अपनी शेष आयु व्यतीत कर देगी।

सुबह धूप निकलने पर घूमने निकला। पैर स्वयं उसी सड़क की ओर चल दिए। चट्टानों की आड़ में मोड़ घूमकर देखा—वह औरत अपने खेतों में निराई कर रही है। आने-जानेवाले की आहट पा एक नजर सड़क पर डाल लेती है। मालूम पड़ता था, उसके व्यथा और श्रम से क्लान्त शरीर को आशा की एक मन्द लौ ने जीवित रखा है। यह मन्द लौ परसराम के लौट आने की आशा है।

मुझे देख उसके चेहरे पर एक फीकी-सी मुस्कराहट फिर आई। हाथ की कुदाली एक तरफ डालकर वह बोली —"क्या लाहौर लौट रहे हो ?"

उत्तर दिया —"नहीं, ज़रा ऐसे ही घूमने चला आया।"

मैं उसके खेत में चला गया। पूछा —"परसराम यहां कितने दिन रहा था ?"

पहाड़िन ने जवाब दिया—"आठ महीने। कहता था —जल्दी ही लौट

आऊंगा, अभी तक नहीं आया ? जाने कब आएगा ? लड़की भी इतनी बड़ी हो गई !"

मैंने पूछा—"तो तुम उसके साथ लाहौर क्यों नहीं चली गईं ?"

उसने गाल पर हाथ रखते हुए कहा—"हां, मैं नहीं गई। परसराम ने तो कहा था, तू चल। पर मैं नहीं गई। देखो, मैं कैसे जाती ? यहां का सब कैसे छोड़ जाती ? वह सामने खुरवानियों के पेड़ हैं, वे नाशपातियां हैं, सेब हैं, दो अखरोट हैं। मैं यहां से कभी कहीं नहीं गई। एक दफे जब मैं छोटी थी, मेरी मौसी मुझे अपने गांव, वहां नीचे ले गई थी। उसका घर बहुत दूर है। दस कोस होगा। वहां बहुत वैसा-वैसा है, न यह पहाड़, न यह ब्यास नदी की आवाज़, न ऐसे पेड़, रूखा-रूखा मालूम होता है। वहां मुझे बुखार आ गया था, तब मेरा फूफा पीठ पर लादकर यहां लाया। आते ही मैं चंगी हो गई। मैं कभी कहीं नहीं गई। लाहौर तो बहुत दूर है, वहां शायद लोग बीमार हो जाते हैं। परसराम के लिए मुझे बहुत डर लगता है। क्या जाने, क्या हाल हो ? हमारे यहां बीमार कभी ही कोई होता है। हो भी जाए तो हर्दू जुलाहा झाड़-फूंक देता है। लाहौर में क्या कोई अच्छा झाड़ने-वाला है ?

मैंने उत्तर दिया—"हां हैं क्यों नहीं, बहुत-से हैं।"

सन्तोष से सिर हिलाकर उसने कहा—"अच्छा।"

सकुचाते-सकुचाते मैंने पूछा—"परसराम के आने से पहले तुम्हारा ब्याह नहीं हुआ था ?"

उसने कहा—"ब्याह तो हुआ था, बहुत पहले। मुझे ब्याहकर यहां से मेरा आदमी तकू ले गया था। वहां मुझे अच्छा नहीं लगा। मैं बीमार हो गई। वहां मेरी सौत मुझे मारती थी। मैं यहीं लौट आई। मेरा आदमी कभी-कभी यहां आकर रहता था। ब्याह के तीन साल बाद वह गुज़र गया। मैं मां के पास ही रही। मैंने परसराम से कहा था—यहां सब कुछ है, तू कहीं मत जा। वह कहता था, मैं जल्दी आ जाऊंगा। पांच बरस हो गए, वह अभी तक नहीं आया। देखो कब आए ? अब तो दो बरस से मां भी

नहीं है।"

चौथे दिन तीसरे पहर मैं फिर उधर से गुज़रा। वह सिर झुकाए अपने खेत में काम कर रही थी। कुछ गुनगुनाती जाती थी। मैं क्षण-भर खड़ा देखता रहा। शायद वह विरह का गीत गुनगुना रही थी या पिछले दिनों की याद कर रही थी। उसके ध्यान में विघ्न डालना उचित न समझा, लौट आया।

मण्डी में मैं सप्ताह-भर ठहरा। कुल्लू के लिए चलने से पहले मैं उसे फिर एक दफे देखने के लिए गया। वह अपने खेत में अनमनी-सी निराई कर रही थी। उसकी लड़की खेत से निकाले हुए घास को दौड़-दौड़कर बाहर फेंक आती थी।

मैंने कहा—"आज जा रहा हूं।"

उसने उत्सुकता से पूछा—"लाहौर ?"

मैंने कहा—"हां, कुल्लू जा रहा हूं, वहां से लाहौर लौट जाऊंगा।"

बड़ी आजिज़ी से उसने कहा—"परसराम से मेरा सन्देसा ज़रूर कहना। कहना—दिन-भर सड़क ताका करती हूं; मैं बड़ी इन्तज़ार में हूं; पांच बरस हो गए, अब ज़रूर लौट आ। तेरी लड़की तुझे पुकारती है। कहोगे न ?"

मैंने कहा—"ज़रूर कहूंगा।"

अपनी बेटी को प्यार कर वह बोली—'देख, बाबू तेरे बाप के पास जा रहा है। बाबू को सलाम कर। बाबू तेरे बाप को भेज देंगे।"

"अच्छा" कहकर मैं लौट पड़ा और फिर उधर न देख सका। ऐसा जान पड़ता था, मेरी गर्दन की पीठ पर उसकी आंखें गड़ी जा रही हैं। मन में एक बेचैनी-सी अनुभव हो रही थी। कह नहीं सकता—परसराम के प्रति क्रोध था···पहाड़िन के प्रति करुणा थी या परसराम से ईर्ष्या···?